ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
ISSN No.: 2347-2944, *RNI:UPBIL04292,REG.No.:561/2013-14Vol.-I, No.-1*, **PP-98-101**, *YEAR 2014*

ब्राह्मणग्रन्थ युगीन शिक्षा की वर्तमान में प्रासंगिकता

❑ डॉ0 समीर कुमार पाण्डेय*

मानव निसर्गतः प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट कृति है। उसकी इस उत्कृष्टता के प्रमुख दो पक्ष हैं–प्रथम जैविक तथा द्वितीय सामाजिक। प्रथम पक्ष का आधार आहार–व्यवहार नियमन तथा दूसरे पक्ष का आधार उसकी शिक्षा एंव संस्कृतिक चेतना है। यह चेतना मनुष्य की भाव्यित्री तथा कारयित्री प्रतिभा का परिणाम है। जो प्रथमतः माता–पिता तथा पारिवारिक सदस्यों द्वारा नियोजित स्थापित तथा प्रतिस्थापित होती है। नियोजन, स्थापन तथा प्रतिस्थापन की यह प्रक्रिया सर्वदेशीय, सर्वकालिक एवं अविकल रूप से प्रवाहित होती है। यही कारण है कि शिक्षा एक समाजिक क्रिया के रूप मे सर्वांगीण विकास हेतु प्रतिष्ठित समादृत एवं स्वीकार हुई। चूँकि यह प्रक्रिया सर्वकालिक सर्वदेशीय एवं सर्वजनीन हैं। इसलिए इसके वाह्य कलेवर में भी सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। विविध आयामों, आवर्तों तथा परिवर्तनों से संक्रमित होने पर भी भारतीय शिक्षा अपने मूल उद्देश्य से कभी विरत नही हुयी ।

शिक्षा शब्द शिक्ष भाव में अ+टाप के संयोग से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ अधिगम अध्ययन एवं अधिग्रहण है। किसी कार्य के करने योग्य होने की इच्छा, निष्णात होने की इच्छा, अध्यापन प्रशिक्षण आदि का भी अर्थबोध उक्त शब्द से होता है।[1] शिक्ष् धातु से व्युत्पन्न होने के कारण इससे सीखने और सिखाने दोनों का बोध होता है।

ब्राह्मण काल में उच्च विचार, ज्ञान की महिमा, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिन्तन और भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्त मानव जीवन के मूल्य थे। तत्कालीन समाज शिक्षा के क्षेत्र में भौतिकवाद की अपेक्षा आध्यात्मवाद को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। कठोपनिषद् में वर्णित नचिकेतोपाख्यान इसका अन्यतम उदाहरण है। वृहदारण्यक उपनिषद[2] में कहा गया है कि जिसे ज्ञान का प्रकाश उपलब्ध नहीं होता वह नेत्रहीन है और नरक के अन्धकार में जा गिरता है। अतः शिक्षा अथवा ज्ञान को मानव जीवन के अन्तर्गत पूर्वकाल से ही अति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया था।

ब्राह्मण ग्रन्थों के युग में शिक्षा की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। इस काल को बौद्धिक विकास का युग कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि इसी काल में विशाल वैदिक साहित्यों का सृजन हुआ, जिसका आधार था उपनयन संस्कार के द्वारा विद्यार्थी जीवन के साथ ही सुनियोजित शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ। शिक्षा राज्य– प्रशासन के अधीन न होकर स्वतन्त्र रूप से आचार्य कुलों के अधीन होती थी। उसके संचालन की सम्पूर्ण जिम्मेदारी आचार्य कुल के कुलाधिपति की होती थी किन्तु राज्य–प्रशासन भी इस बात का ध्यान रखता था कि आश्रमों की व्यवस्था में किसी प्रकार की क्षति न हो। तत्कालीन शिक्षा के मुख्य छः घटक प्रतीत होते है–शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षा केन्द्र, शिक्षा का विषय, माता–पिता तथा समाज। ब्राह्मण काल में शिक्षक के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग होता था।[3] इसी प्रकार शिक्षार्थी के लिए सामान्यतः 'ब्रह्मचारी' शब्द का प्रयोग किया गया है।[4] ब्राह्मण ग्रन्थों में शिक्षार्थी (ब्रह्मचारी) के दो प्रकार उल्लिखित हैं प्रथम ब्रह्मचारी आचार्य कुल में निवास करके विद्याध्ययन के पश्चात् अपने गृह आ जाता था, दूसरा ब्रह्मचारी आचार्य कुल में ही रहकर अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता था[5]। शतपथ ब्राह्मण[6] के अनुसार ब्रह्मचारी के लिए नित्यकर्म था जंगल में

*असि0 प्रोफेसर–शिक्षा संकाय सन्त तुलसीदास पी0जी0 कालेज कादीपुर, सुलतानपुर, उ0प्र0

जाकर प्रतिदिन यज्ञ के निमित्त समिधा लाना। अग्निहोत्र के लिए प्रतिदिन समिधा लाता हुआ ब्रह्मचारी अग्नि को अपने अन्दर धारण करता था। ब्रह्मचारी का दूसरा नित्यकर्म भिक्षाटन था, भिक्षाटन से ब्रह्मचारी के अहं की मृत्यु हो जाती थी। आचार्य की आज्ञा का पालन करना, अपनी इच्छा से कुछ भी न करना यह आचार्य को अपने अन्दर धारण करना था। नित्य समिधा लाकर अग्निहोत्र न करना ब्रह्मचारी के अन्दर मृत्यु का प्रवेश समझा जाता था[7]।

कठोपनिषद् के शान्तिपाठ से सूचित है कि शिक्षा का स्वस्थ आदर्श स्वरूप आचार्य और शिष्य के मधुर सम्बन्ध पर आधारित था। दोनों प्रतिदिन पाठ आरम्भ करने से पूर्व ईश्वर से प्रार्थना करते थे कि वह उन दोनों की एक साथ रक्षा करे, दोनों को ज्ञान का संभागी बनावे, दोनों एक साथ विद्या–प्रदान एवं विद्या–ग्रहण का पराक्रम करें दोनों द्वारा अर्जित विद्या तेजस्वी हो, तथा वे परस्पर द्वेष न करें ''सहनाववतु स नौ भुनक्तु सह वीर्य करवावहै, तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।'' तैत्तिरीय उपनिषद[8] में विद्या को एक संहिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसका पूर्वरूप आचार्य है उत्तर रूप शिष्य है, विद्या संधि तथा प्रवचन संधान है।

शिक्षा केन्द्र तत्कालीन शिक्षा का तीसरा प्रमुख घटक है वैदिककाल से ही शिक्षा प्रदान करने के लिए तीन प्रमुख संस्थायें प्रतीत होती है–आश्रम, परिषद और सम्मेलन। एक निश्चित समय में विधिपूर्वक शिक्षा प्रदान करने वाले केन्द्रों को आश्रम, आचार्यकुल अथवा गुरूकुल कहा जाता था। ये आश्रम नगरों से दूर वनों में प्रकृति के खुले वातावरण में स्थित होते थे। आश्रम के अधिष्ठाता आचार्य का यहीं निवास होता था। उपनयन संस्कारोपरान्त व्यक्ति शिक्षा ग्रहण के योग्य होता था। सामान्यतः 25 वर्ष तक शिष्य गुरूकुल या आश्रम में रहते थे। अध्ययन के समय बहुत से शिष्य एक साथ आचार्य के पास बैठकर वैदिक मन्त्रों को कण्ठस्थ करते एवं उनका सस्वर उच्चारण किया करते थे। आचार्य शुद्ध उच्चारण तथा पाठ कण्ठस्थ होने के उपरान्त ही शिष्यों को आगे शिक्षा प्रदान करते थे। तत्कालीन शिक्षा का स्वरूप सैद्धान्तिक ही न होकर व्यावहारिक भी था। आश्रम में शिष्य अपने आचार्य के साथ उसके परिवार का एक सदस्य होकर रहता था जिससे शिष्यों का आचार्य के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता था। इसी समय वह अपने आचार्य के गुणों को आत्मसात करने लगता। आचार्य के आदेशों को प्राप्त करना ही उसका उद्देश्य होता था।[9] आश्रम के स्वस्थ वातावरण में शिष्य अनेकों नीतिगत शिक्षायें ग्रहण करता था। यहीं पर शिष्य आत्मनिर्भरता, परिश्रम का महत्व जीवों के प्रति श्रद्धाभाव, बड़ों के प्रति सम्मान, सहपाठियों के साथ भातृत्वभाव आदि की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करता था।

आश्रम की शिक्षा समाप्त करने के बाद ब्रह्मचारी स्नातक कहलाता था। स्नातक व्यक्ति प्रज्वलित अग्नि के समान तेजमय एवं वेदज्ञ हो जाता था।[10] स्नातक हो जाने पर शिष्य को आचार्य द्वारा उपदेश प्राप्त होता था कि –सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय में कभी आलस्य मत करना आचार्य के लिए प्रिय धन लाकर पुत्र–पौत्रों आदि का विस्तार करो। सत्य से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। धर्म से, स्वध्याय और उपदेश से, देव और पितरों के कार्य से कभी प्रमाद नहीं करना चाहिए। माता को देवता मानने वाला बनो, पिता को, आचार्य को, अतिथि को देवता मानने वाला बनो। जो अनिन्दित कर्म है उन्हीं को करना चाहिये अन्य कर्मों को नहीं। जो हमारे सुन्दर कर्म हैं उन्ही का आचरण तुम्हें करना चाहिये अन्य कर्मों का नहीं जो कोई हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हो उनको आसन देकर उनका आदर–सत्कार करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक देना चाहिए, वैभव के अनुसार देना चाहिए, लज्जावश भी देना चाहिए, भयवश भी देना चाहिए, सहानुभूतिवश भी देना चाहिए। यदि किसी कर्म या वृत्ति के विषय में विचिकित्सा हो तो वहाँ भी विचारशील, पक्षपातहीन, मृदुस्वभाव वाले एवं धर्म में रूचि रखने वाले ब्राह्मण उस विषय में जैसा आचरण करें वैसा तुम्हें आचरण करना चाहिए। यदि मिथ्याभियुक्त व्यक्तियों के विषय

में विचिकित्सा हो तो वहाँ भी विचारशील, पक्षपात हीन, मृदुभाषी एवं धार्मिक ब्राह्मण जैसा आचरण करें वैसा तुम्हें आचरण करना चाहिए, यही उपदेश है, यही वेद का रहस्य है, यही हमारा अनुशासन है, इसी का तुम्हें पालन करना चाहिए, यही तुम्हारे लिए उपास्य है।[11] यही उपदेश शिष्य के भावी जीवन के लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता था। इन उपदेशों को सुनकर शिष्यों को सुनकर शिष्यों की सांस्कृतिक चेतना जागृत हो जाती थी जो शिक्षा का एक महान उद्देश्य है।

वैदिक काल से ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिषदें भी हुआ करती थी ये परिषदें उनके लिए होती थी जो विद्यार्थी जीवन व्यतीत करने के पश्चात भी स्वयं को सत्य और ज्ञान की खोज में लगते थे। इन परिषदों में दूर–दूर से विद्वान आते थे और शास्त्रार्थ करते थे। अपने समय के ख्याति प्राप्त विद्वानगण इनमें भाग लेते थे। छान्दोग्य उपनिषद[12] में उल्लेख है कि राजा प्रवाहण जाबालि पांचाल परिषद के सदस्य थे। वे प्रतिदिन उस परिषद में जाया करते थे यही पर शिलक, शालावत्य, चैकितायन तथा दाल्भ्य का राजा प्रवाहण जाबालि के साथ उद्गीथ के विषय में शास्त्रार्थ हुआ था। यदि कोई आचार्य किसी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ होता था तो वह ऐसी ही परिषदों में शिष्य को भेज देता था जहाँ जाकर शिष्य अपनी शंका का निवारण करता था।

ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणयन के काल में शिक्षा के प्रसार के लिए तीसरे प्रकार की संस्था को 'सम्मेलन' कहा जा सकता है। ये सम्मेलन राजाओं द्वारा आयोजित किये जाते थे। सम्भवतः यज्ञों के आयोजनों के समय ही देश भर के विद्वानों को किसी विशेष विषय पर शास्त्रार्थ करने के निमित बुलाया जाता था। जो इस शास्त्रार्थ में विजयी होता था उसे पुरस्कृत किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण में इसी प्रकार के एक सम्मेलन का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके संयोजक राजा जनक थे। इस सम्मेलन में याज्ञवल्क्य ने कुरू–पांचाल देश से इकट्ठा हुए विद्वानों का पराजित किया तथा एक हजार गायें जिनकी सींगो में दस–दस पाद (सोने का सिक्का) बंधा हुआ था प्राप्त किया था।[13]

ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रणयन काल में वेदों के साथ–साथ अनुशासन, विद्या, वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, स्वर (संगीत), संस्कार, निरूक्त, अनुशासन (धर्मशास्त्र), अनुमार्जन (संशोधन) तथा वाकोवाक्य का वर्णन प्राप्त है।[14] छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित[15] नारद और सनतकुमार के संवाद के माध्यम के तत्कालीन शिक्षा के विविध विषयों के संकेत के अन्तर्गत चारों वेदों के साथ–साथ इतिहास, पुराण, पितृ विद्या (नृवंश विज्ञान), राशि विद्या, दैव विद्या, निधि विद्या, वाकोवाक्य, एकायन (नीतिशास्त्र), देव विद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या (शस्त्र विद्या), नक्षत्र विद्या, सर्प विद्या तथा देवजन विद्या का उल्लेख है। इन विद्याओं के अतिरिक्त लौकिक विद्याओं की भी शिक्षा आश्रमों में दी जाती थी। लौकिक विद्या के अध्ययन में शिष्य की रूचि का विशेष ध्यान रखा जाता था। तथा उक्त सूचियों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो चुका था।

ब्राह्मण गन्थों के काल में शिक्षा की समुन्नत स्थिति का कारण तत्कालीन समाज की शिक्षा के प्रति उदात्त भावना थी। समाज में आचार्य तथा उसके शिष्यों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। दोनो ही पूजनीय माने जाते थे। ब्रह्मचारी शिक्षा उपार्जन हेतु जिस के घर जाता था वह अपने को धन्य मानता था। समाज में आचार्य तथा ब्रह्मचारी का सम्मान राजा के समान था। राजा भी इनको प्रणाम करते थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मणयुगीन शिक्षा जहाँ धार्मिक व आध्यात्मिक चेतना से आपूरित थी, वहीं वह उच्च विचार, ज्ञान का माहात्म्य, त्यागमय जीवन, आध्यात्मिक चिन्तन और भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्त मानव जीवन के मूल्यों से अनुप्राणित थी। सामाजिकता, नैतिकता व व्यावहारिक ज्ञान के समस्त अवयव उसमें विद्यमान थे। व्याकरणिक ज्ञान का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि तत्समय व उत्तरकाल में विशाल सद्साहित्य का सृजन हुआ,

जिससे आज समस्त मानवता लाभान्वित हो रही है।

यदि ब्राह्मणकालीन शिक्षा से आचार्यगण की महानता, शिष्यों की ज्ञान–पिपासु प्रवृत्ति, शिक्षा के उद्देश्य यथा उच्च मानवमूल्य, श्रवण, मनन, व्याख्यान तथा परस्पर शास्त्रार्थ (परिचर्चा) आदि को तृणतुल्य भी आत्मसात कर लिया जाय तो वर्तमान संत्रासयुक्त सामाजिक परिवेश के स्वच्छ परिवेश में बदल जाने में किंचित समय नहीं लगेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. आप्टे शिवराम वामन, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ0 1015
2. वृहदारण्यक उपनिषद–4.4.11
3. आचार्यो ब्राह्मणः प्रजापतिः। अथर्ववेद 1.5.7, 8, 9,
4. शतपथ ब्राह्मण 1.3.3.1–2, 1.3.3.7.11.5.4.1–18,
5. ऋग्वेद–7.103.5
6. छान्दोग्य उपनिषद 2.23।
7. शतपथ ब्राह्मण 1.3.3.3–6
9. शतपथ ब्राह्मण–11.5.4
10. शतपथ ब्राह्मण–11.3.36
11. शतपथ ब्राह्मण–11.3.3.7
12. तैत्तिरीय उपनिषद–1.11.1–6
13. छान्दोग्य उपनिषद–1.8
14. शतपथ ब्राह्मण–11.6.3.1, 14.6.1–11
15. गोपथ ब्राह्मण पूर्वभाग–2.10
16. छान्दोग्य उपनिषद–7.1.2